1\. ॥ ॐ ॥ <u>गुरु पर्व</u>

श्रीगुरु श्री कृष्ण का अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को श्रीगीता में दिया गया उपदेश - सार-संक्षेप -

<u>वन्दना गुरु जी को:</u>

कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-और पाण्डवों की 18 अक्षौहिणी सेनायें युद्ध के लिये तैयार हैं। उस समय अर्जुन को युद्ध के लिये आये हुये अपने भाई-बान्धवों गुरु, पितामह-पिता-पुत्र पौत्र-प्रपौत्र-स्वजनों और सुहृदयों को देख कर विषाद होता है, कि वह जिन स्वजनों को मार कर त्रैलोक्य का राज्य भी नहीं चाहता और जिनके न रहने पर वह किसी का कल्याण भी नहीं देखता। अतः ऐसी विषम ~~स्थिति~~ परिस्थिति में अर्जुन मोहित चित्त होकर युद्ध से विरत हो जाता है।

वह भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना करता है कि "भगवन् मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में आया हूँ। मुझे शिक्षा दीजिये, जो मेरे लिये हितकारी हो, वह कहिये।"

तब भगवान ने पहले उसके शोक-और मोह को दूर करने के लिये आत्मयोग की शिक्षा देते हैं कि "आत्मा अजर-अमर-अविनाशी है। विनाशी तो यह शरीर और संसार है।" "जन्मे हुये जीव की मृत्यु और मरे हुये का पुनर्जन्म निश्चित है। इसलिये इस अपरिहार्य उपाय वाले विषय में शोक करना उचित नहीं है। और कर्त्तव्य पालन करने का आदेश देते हैं, कहते हैं —

अर्जुन! तुम क्षत्रिय हो उठो और युद्ध करो। यदि युद्ध नहीं करोगे तो अपने स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगे। अपकीर्ति और निन्दा मरण से बढ़कर है! इसलिये सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझ कर युद्ध करो। इससे तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

भगवान का यह उपदेश केवल अर्जुन के लिये ही नहीं वरन् संसार के सभी प्राणियों के लिये है। साधकों के लिये है। यह संसार ही कुरुक्षेत्र है, हम सभी प्राणी युद्ध के लिये उतरे हैं। इस धर्मयुद्ध का लक्ष्य है भवसागर से पार कर ईश्वर-से, ब्रम्ह से मिलने ~~के लिये~~ का।

यह शरीर ही रथ है। बुद्धिजीव अर्जुन ही रथी है। रथ के दस घोड़े ही दस इन्द्रियां हैं और इन घोड़ो की लगाम सारथि-आत्मा श्री कृष्ण के हाथ में है। ~~आत्मा ही श्री कृष्ण है~~ सारथी जब जीव रथी अपना सर्वस्व त्याग कर स्वयं को श्री कृष्ण सारथि को सौंप देता है तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और ईश्वर तत्व की प्राप्ति होती है

<u>सांख्य योग और कर्मयोग</u> —

श्री भगवतगीता के दो मुख्य विषय हैं. सांख्य योग (ज्ञान योग) तथा कर्मयोग। इन दोनो योगों के साधन अलग-अलग हैं लेकिन अन्तिम गति एक ब्रह्म निर्वाण की प्राप्ति है।

<u>सांख्ययोग</u> — यह आध्यात्मिक साधन है। इसमें ज्ञान की प्रधानता होती है। इस मार्ग के साधक समदर्शी होते हैं। वे अपनी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों (जीवों) में देखते हैं और सम्पूर्ण भूतो को अपनी आत्मा में देखते हैं। फिर अपनी आत्मा को ब्रम्ह में लीन कर देता है, उसके लिये सारा संसार ईश्वर मय हो जाता है।

सांख्य योगी संसार को स्वप्नवत समझता है, जिसके सभी कार्य माया प्रकृति के द्वारा होते हैं ऐसा समझ कर मन-इन्द्रियों और शरीर द्वारा जो कर्म होता है उसमें उसे कर्त्तापन का अहं नहीं होता है अर्थात् वह कुछ भी नहीं करता है। उसके द्वारा किये गये कर्मो का कोई फल-पाप-पुण्य का नहीं होता है। अहं भाव ब्रम्ह में लीन हो जाने से वह

अहं भाव और देहाभिमान से रहित होता है और सर्वत्र एक वासुदेव कृष्ण का ही दर्शन करता है। वह ब्रह्म को प्राप्ति करता है। ज्ञात-ज्ञातव्य हो जाता है अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है।

कर्मयोग

संसार कर्ममय है। इस संसार में निःसन्देह कोई भी मनुष्य बिना कर्म के नहीं रह सकता है क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जन्य गुणों द्वारा परवश होकर कर्म करने को बाध्य है। कर्म के किये बिना, पुरुषार्थ किये बिना शरीर का निर्वाह भी नहीं होता है। अतः भगवान ने अनासक्त होकर शास्त्रविहित कर्म करना कर्मयोग का साधन बताया है।

कर्मयोग मौलिक साधक है। इसमें कर्म में अकर्म की मुख्यता होती है। अर्थात् जो मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों में एक अकर्म को देखता है, वही बुद्धिमान है। कर्म में अकर्म देखने का तात्पर्य है — किये गये कर्म में उसके फल और आसक्ति को छोड़कर ईश्वर की आज्ञानुसार कर्म करना है। इससे कर्मफल नहीं होता है अर्थात् कर्म-निष्कर्म हो जाता है।

मनुष्यों के द्वारा तीन प्रकार से कर्म किये जाते हैं। 1. स्वयं के हित के लिये 2. परहित के लिये 3. ईश्वर के लिये।

स्वयं के लिये किया गया कर्म सांसारिक कर्म होता है। इसमें मनुष्य सुख प्राप्ति के लिये अनेक भोग संग्रह - ऐश्वर्य संग्रह तथा नाना प्रकार की कामनाओं की पूर्ती करता है उसमें उसका चिन्तन और स्वार्थ भी होता है अतः उसके कर्म को करते समय आसक्ति, ममता, प्रियता, चिन्ता, स्पृहा तथा अहं भी आता है।

इस प्रकार के कर्म में दो प्रकार के फल पाप-पुण्य के लगते है, जो समय पाकर फलते-फूलते है और मनुष्य को उसे भोगना पड़ता है। आसक्ति में लिप्त जीव को कर्मों द्वारा निरन्तर पाप-पुण्य के फल मिलते है जिन्हे उन्हें भोगना पड़ता है

यही पाप-पुण्य जन्म-मरण का कारण बनते हैं। यह क्रम निरन्तर जन्मजन्मान्तर तक चलते हैं।

दूसरे प्रकार के कर्म का रूप पर-हित के लिये होता है। जो मनुष्य कर्म में अकर्म करता हुआ अनासक्त भाव से कर्म करता है, उसका कोई फल नहीं होता। पुराने फलों का भोग भी क्षय होने लगता है। उसे कर्म की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समत्व भाव से कर्म करता हुआ शांति को प्राप्त होता है। वही कर्मयोगी है। फिर उसे करने को कुछ नहीं रह जाता है। वह कृत-कृत्य हो जाता है।

तीसरे प्रकार का साधन भक्ति योग है। इसमें साधक भगवान के भक्त होते हैं। यह आस्तिक योग है। इस साधना में साधक के सभी कर्म ईश्वर को समर्पित होते हैं। साधक अपना सर्व-स्व अपने को भी ईश्वर को समर्पित कर देता है। उसका जो कुछ है वह सब वासुदेव का होता है। वासुदेव सर्वम्। सर्वत्र प्राणीमात्र में वासुदेव को ही देखता है। शरणागत होकर उसे कुछ भी करने को नहीं रह जाता। वह प्राप्त-प्राप्तव्य हो जाता है। ईश्वर में लीन हो जाता है।

कर्म साधन में बाधायें

कर्मयोग साधन में सबसे बड़ी बाधा सांसारिक सुख भोग, ऐश्वर्य भोग संग्रह और कामनायें हैं। जब मनुष्य विषयों का चिन्तन करता है तो मन में कामनाओं की उत्पत्ति होती है, फिर वह भोगैश्वर्य और कामना की पूर्ति में लग जाता है, संग्रह में लग जाता है। फिर धीरे-धीरे संग्रहीत वस्तुओं की आसक्ति और ऐश्वर्य की वासना में फंस जाता है। वस्तुओं के प्रति आसक्ति ममता और प्रियता बढ़ने लगती है। फिर स्पृहा अर्थात् निर्वाह होना की चिन्ता आती है कि इतनी मेहनत से जो संग्रह किया है, बनाया है, उसे कैसे सुरक्षित करें, संरक्षित करें। यह चिन्ता दुःख देने वाली है।

5. भौतिक सुख संग्रह के समय भी कष्ट देती है और बाद में भी दुःख होता है। संसार की वस्तुयें संसार तत्व की होती हैं वे कभी स्थिर नहीं रहती। अतः स्पृहा से दुःख मिलता है, साथ ही अहं भाव अभिमान बढ़ने लगता है। मनुष्य में विशिष्टता का भाव आता है।
इस प्रकार कामना - ममता - स्पृहा चिन्ता तथा अहंता भाव आता है।

दूसरी तरफ यदि कामना की सिद्धि में बाधा पड़ती है तो मनुष्य को बहुत क्रोध आता है। क्रोध से सम्मूढ़-भाव होता है, मोह भाव से स्मृतिभ्रंश होती है तथा बुद्धि विचलित हो जाती है जिससे मनुष्य का पतन हो जाता है। उसे बहुत दुःख होता है। अतः कामना की सिद्धि और असिद्धि दोनों ही अवस्थाओं में दुःख होता है। दुःख का कारण है।
भगवान ने इसलिये इन दुःखों से बचने के लिये मुख्य रूप से चार चीजों का त्याग बताया है।

1. जो प्राप्त नहीं है, उसकी कामना।
2. जो प्राप्त है, उसके प्रति प्रियता, ममता।
3. स्पृहा - निर्वाह की चिन्ता।
4. अहं-अभिमान - अहंता।

गीता में भगवान कहते हैं - उपाय बताते हैं।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्ति गच्छति॥

जो पुरुष कामनाओं का त्याग करके ममता रहित, अहंकार रहित और निःस्पृह (~~बिना~~ चिन्ता रहित) होता है वही साधक है स्थित प्रज्ञ है। योगी है, तथा शांति को प्राप्त करता है।

संसार में रहकर कर्म करना, पुरुषार्थ तो करना ही है। इनको छोड़ना नहीं है क्योंकि बिना कर्म के, उद्यम के कुछ भी नहीं है। कर्म ही संसार है। केवल संग्रहीत ऐश्वर्य सुखभोग वस्तुओं और कामनाओं के प्रति जो आसक्ति है प्रियता है जिनके कारण वे अच्छे लगते हैं उस वासना को त्याग करना है। त्याग से ही दुःखों का अन्त होगा।

जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर शास्त्रविहित कर्म करता है वही कर्म योगी है। कर्म सिद्धि होने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है जिसे 'ब्रह्म निर्वाणमृच्छति'। वही सन्यासी है। कर्मयोगी है।

भागवत की कथा -

भागवत में श्रीकृष्ण और दुर्वासा ऋषि की कथा आती है। एक बार श्रीकृष्ण यमुना के किनारे गोपियों के साथ लीला विहार कर रहे थे उसी समय महर्षि दुर्वासा पधारे, भगवान ने और गोपियों ने महर्षि के चरण वन्दन किया। फिर ऋषि बोले कृष्ण मुझे बहुत भूख लगी है अतः भोजन करना है। तब भगवान ने गोपियों से ऋषि के लिये भोजन लाने को कहा। श्रीकृष्ण के आदेश पर गोपियां अपने-अपने घरों को भोजन लेने गई। यहाँ दुर्वासा ऋषि ने यमुना के दूसरी ओर जाकर अपना आसन लगाया। गोपियाँ जब थाल लेकर आई तो देखा ऋषिवर तो उस पार बैठे हैं अतः गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा मोहन। ऋषिवर तो उस पार हैं, हम लोग यमुना मैया को कैसे पार करें तो भगवान बोले - जाओ और यमुना मैया से प्रार्थना करना कि यदि कृष्ण जन्म से ब्रह्मचारी हैं तो हमें मार्ग दे दें। अब तो गोपियां आश्चर्य में पड़ गई कि कृष्ण और ब्रह्मचारी - मुस्कराती हुई यमुना के किनारे आई और यमुना मैया से कहा यदि कृष्ण जन्म के ब्रह्मचारी हैं तो हमें उस पार जाने के लिये मार्ग दे दें। यमुना मैया ने मार्ग दे दिया और गोपियां भोजन का थाल लेकर उस पार पहुँची। वहाँ गोपियों ने ऋषिवर को बड़े प्रेम से भोजन कराया ऋषि ने बहुत तृप्त हो कर भोजन किया और बहुत प्रसन्न हुये।

गोपियों जब लौटने को हुई तो फिर वही समस्या कि यमुना नदी पार कैसे करें। तब गोपियों ने महर्षि से कहा

कि महर्षिवर हम लोग नदी कैसे पार करें बीच में यमुना मैया है, तब महर्षि बोले कि जाओ और यमुना मैया से प्रार्थना करना कि यदि सती जन्म से भूखे हो तो हमें रास्ता दे दो। गोपियों ने ऐसा ही किया, यदि महर्षिवर दुर्वासा जन्म से भूखे हो तो ~~रास्ता~~ मार्ग दे दें और माँ ने मार्ग दे दिया। गोपियाँ आश्चर्य चकित इस पार आई और अपने-अपने धाम पहुँची।

भागवत की यह कथा एक स्थिर प्रज्ञ योगी और अनासक्त योगी की कथा है। जिसके सभी कार्य प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं। शरीर से मायामय संसार का निर्वाह करते हुये, सारे जगत व्यवहार करते हुये- जो मन से निर्लिप्त, वासना रहित है, फल की लालसा से रहित अनासक्त है। वही कर्म योगी है, ब्रह्मचारी है, और वही साधक कर्म सिद्धि को प्राप्तकर ब्रह्म निर्वाण को पाता है।

अन्त में भगवान कहते हैं जो भी भक्त मान-अपमान से रहित, सुख-दुःखादि द्वन्दों से रहित पूर्णरूप से मेरे आश्रित हैं। मैं उनका हूँ वे मुझे प्रिय हैं। भक्त साधक सारे संसार में प्राणी मात्र में एक परमेश्वर के सिवा कुछ नहीं देखता। वासुदेव सर्वम्। वह अपना सर्वस्व ईश्वर को समर्पित कर देता है। तब भगवान कहते हैं ऐसे भक्त मुझे प्रिय है, उनका योग-क्षेम मैं वहन करता हूँ।

भगवान प्रतिज्ञा करते हैं।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

8.

हे भक्त! — तू सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सभी कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर, एक मुझ सर्वशक्तिमान परम परमेश्वर की शरण में आजा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक न कर।

श्री कृष्णाय नमः!

श्रीमती करुणा सरन